एम. मनोहर रेड्डी और अन्य

बनाम

भारत संघ और अन्य

(रिट याचिका (सिविल) संख्या 174/2012)

4 फ़रवरी 2013

[आफताब आलम और रंजना प्रकाश देसाई, जेजे.]

भारत का संविधान, 1950:

अनुच्छेद 32 सपठित अनुच्छेद 217 - उच्च न्यायालय के न्यायाधीश की नियुक्ति को रद्द करने की मांग करते हुए अधिकार वारंट की रिट के लिए याचिका - पदधारी के खिलाफ लंबित एक आपराधिक मामले पर विचार करने में विफलता के कारण कथित तौर पर नियुक्ति के लिए परामर्श प्रक्रिया को प्रभावित किया गया है - माना गया: 'पात्रता' पदधारी का कोई मुद्दा नहीं है - जहां तक 'प्रभावी परामर्श की कमी' का संबंध है, एक तथ्य जो किसी के लिए अज्ञात है, उस पर विचार नहीं किया जा सकता है और उस कारण से परामर्श प्रक्रिया को अधूरा नहीं माना जा सकता है - उस समय पदधारी को उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में नियुक्ति के लिए विचार किया जा रहा था, वह ऐसे किसी मामले के लंबित होने से अनभिज्ञ था जिसमें उसे आरोपी के रूप में नामित किया

गया था - यह पदधारी द्वारा या उसके आदेश पर किसी भी महत्वपूर्ण तथ्य को छिपाने का मामला नहीं है - से रिकॉर्ड से पता चलता है कि हाई कोर्ट या सुप्रीम कोर्ट कॉलेजिया के किसी भी सदस्य को इस तथ्य की जानकारी नहीं थी - राज्य सरकार और केंद्र सरकार भी इस तथ्य से समान रूप से अनभिज्ञ थे - इसे रद्द करने के लिए यथास्थिति रिट जारी करने का कोई मामला नहीं बनता है। प्रतिवादी क्रमांक 3 की उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में नियुक्ति।

जनहित याचिका:

2000 में की गई उच्च न्यायालय के न्यायाधीश की नियुक्ति को रद्द करने की मांग करते हुए 2012 में दायर की गई रिट याचिका - माना गया: रिट याचिका गलत तथ्यों पर आधारित है - यह किसी चीज को सही करने का ईमानदार और ईमानदार प्रयास नहीं है जिसे याचिकाकर्ता गलत मानते हैं लेकिन यह वास्तविक है इस याचिका का इरादा प्रतिवादी संख्या 3 को बदनाम करना है - रिट याचिका न केवल योग्यता के बिना है, बल्कि प्रामाणिकता के अभाव में भी है।

प्रतिवादी संख्या 3 को अधिसूचना दिनांक 19.6.2000 के अनुसार उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में नियुक्त किया गया था और उन्होंने 27.6.2000 को शपथ ली थी। उक्त उच्च न्यायालय के दो अधिवक्ताओं ने तत्काल रिट याचिका दायर की जिसमें उच्च न्यायालय के

न्यायाधीश के रूप में प्रतिवादी संख्या 3 की नियुक्ति को रद्द करने के लिए यथा वारंटो की प्रकृति की रिट और राज्य बार काउंसिल को उनके नामांकन को रद्द करने का आदेश देने के लिए परमादेश की रिट की मांग की गई। एक वकील. यह कहा गया था कि प्रतिवादी संख्या 3 की नियुक्ति के लिए परामर्श प्रक्रिया दोषपूर्ण थी क्योंकि उच्च न्यायालय और उच्चतम न्यायालय कॉलेजियम के साथ-साथ केंद्र सरकार इस बात पर विचार करने में विफल रही कि ऐसी नियुक्ति के समय, एक आपराधिक मुकदमा लंबित था जिसमें प्रतिवादी संख्या 3 एक अभियुक्त और घोषित अपराधी था और यहां तक कि एक वकील के रूप में नामांकन के समय भी उसने नामांकन के लिए अपने आवेदन में आपराधिक कार्यवाही के तथ्य छुपाए थे। अटॉर्नी जनरल ने कहा कि रिट याचिका सुनवाई योग्य नहीं है और यह केवल एक दिखावा है क्योंकि याचिकाकर्ताओं का लक्ष्य 12 साल से अधिक समय से पद पर रहे न्यायाधीश को हटाना है, जो संवैधानिक योजना का उल्लंघन होगा।

रिट याचिका को खारिज करते हुए, न्यायालय ने:

अभिनिर्धारित किया 1.1. महेश चंद्र गुप्ता मामले में, इस न्यायालय ने "पात्रता" और "उपयुक्तता" के बीच अंतर को उजागर किया और बताया कि पात्रता वस्तुनिष्ठ तथ्यों पर आधारित थी और इसलिए, यह न्यायिक समीक्षा के लिए उत्तरदायी थी। लेकिन, उपयुक्तता राय के दायरे से संबंधित

है और इसलिए, किसी भी न्यायिक समीक्षा के अधीन नहीं है। न्यायालय ने निष्कर्ष निकाला कि न्यायिक समीक्षा की मांग दो आधारों पर की जा सकती है, अर्थात्, (i) "पात्रता की कमी" और (ii) "प्रभावी परामर्श की कमी"। वर्तमान मामले में, प्रतिवादी संख्या 3 की पात्रता कोई मुद्दा नहीं है। [पैरा 13 और 15] [724-बी, ई-एफ; 726-एफ]

महेश चंद्र गुप्ता बनाम भारत संघ 2009 (10) एससीआर 921= 2009 (8) एससीसी 273 - संदर्भित।

1.2. जहां तक प्रतिवादी संख्या 3 के खिलाफ आपराधिक मामले के लंबित होने के कारण 'प्रभावी परामर्श की कमी' का संबंध है, मामला कथित तौर पर रात 8.30 बजे हुई एक घटना से संबंधित है। 13.2.1981 को बड़ी संख्या में विश्वविद्यालय के छात्रों के एक आंदोलन के दौरान, जिसमें राज्य सड़क परिवहन की एक बस क्षतिग्रस्त हो गई थी। प्रतिवादी संख्या 3 प्रासंगिक समय में उक्त विश्वविद्यालय का छात्र था। अज्ञात व्यक्तियों के खिलाफ प्राथमिकी दर्ज की गई थी और आरोपियों को "विश्वविद्यालय के छात्र" बताया गया था। इसके बाद, पांच छात्र नेताओं की पहचान की गई और क्रमांक 3 पर प्रतिवादी संख्या 3 को उनमें शामिल किया गया। क्रमांक 4. अभियुक्त-1 का मामला बरी हो गया। आरोपी 2 से 5 को आवश्यक प्रक्रिया का पालन किए बिना ही भगोड़े के रूप में दिखाया गया। हालाँकि, इसे लंबे समय से लंबित मामले के रूप में दिखाया गया था

और दिनांक 31.1.2002 के आदेश द्वारा मामले को वापस लेने की अनुमति दी गई थी और तदनुसार, सभी आरोपियों को बरी कर दिया गया था। रिकॉर्ड से, यह नहीं कहा जा सकता है कि प्रतिवादी संख्या 3 को यह भी पता था कि अदालतों में दफन किए गए कुछ रिकॉर्ड में उसका नाम आरोपी के रूप में दर्ज किया गया था और उसे उस मामले के संबंध में अदालत में उपस्थित होना आवश्यक था। मामले के रिकॉर्ड के अलावा, प्रतिवादी संख्या 3 के बायोडाटा से यह देखा जा सकता है कि उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में नियुक्ति से पहले, वह राज्य के अतिरिक्त महाधिवक्ता थे। यदि मामला उनकी जानकारी में होता तो यह अकल्पनीय है कि वह इस पर ध्यान नहीं देते और इसे किसी न किसी तरह से समाप्त करवा देते। [पैरा 5, 6, 28, 30 और 31] |719-बी-डी, ई-एफ; 720-ए-डी-ई; 733-ए, एफ-एच]

1.3. इसके अलावा 1995 में, प्रतिवादी संख्या 3 का चयन किया गया और उन्हें आयकर अपीलीय न्यायाधिकरण में न्यायिक सदस्य के पद के लिए नियुक्ति पत्र जारी किया गया। निस्संदेह पुलिस सत्यापन के बाद ही उन्हें नियुक्ति पत्र जारी किया गया था और उस स्तर पर भी उनके खिलाफ किसी आपराधिक मामले के लंबित होने के बारे में कुछ भी उल्लेख नहीं किया गया था। [पैरा 371] [735-जी-एच; 736-ए]

1.4. यह भी ध्यान दिया जाना चाहिए कि तत्काल रिट याचिका दायर

करने से पहले, याचिकाकर्ताओं ने भारत के मुख्य न्यायाधीश और कानून मंत्री दोनों के समक्ष एक अभ्यावेदन दिया था, जिसमें उन्हीं आरोपों पर प्रतिवादी संख्या 3 को उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के पद से हटाने की मांग की गई थी। भारत के मुख्य न्यायाधीश ने इस मामले पर उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश से रिपोर्ट मांगी और बाद में विस्तृत जांच की और उसी निष्कर्ष पर पहुंचे जिस पर यह न्यायालय मामले के रिकॉर्ड के स्वतंत्र मूल्यांकन पर पहुंचा है। [पैरा 32] [734-ए-डी]

1.5. इसलिए, इस न्यायालय का मानना है कि जिस समय प्रतिवादी संख्या 3 को उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में नियुक्ति के लिए विचार किया जा रहा था, वह किसी लंबित मामले से अनभिज्ञ था जिसमें उसे आरोपी के रूप में नामित किया गया था और उसे संदर्भित करना काफी गलत है। मामले में "एक भगोड़ा और घोषित अपराधी" के रूप में। यह निष्कर्ष दूसरे की ओर ले जाता है और वह यह है कि यह प्रतिवादी संख्या 3 द्वारा या उसके इशारे पर किसी भी भौतिक तथ्य को दबाने का मामला नहीं है। [पैरा 33] [734-एफ-एच]

1.6. इसके अलावा, उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में प्रतिवादी संख्या 3 की नियुक्ति से संबंधित रिकॉर्ड से यह स्पष्ट है कि उच्च न्यायालय या सुप्रीम कोर्ट कॉलेजिया के किसी भी सदस्य को इस तथ्य की जानकारी नहीं थी। राज्य सरकार भी इस तथ्य से अनभिज्ञ थी और केंद्र

सरकार भी, जैसा कि कानून मंत्रालय द्वारा तैयार किए गए बायोडाटा और आईबी रिपोर्ट से स्पष्ट है। [पैरा 36] [735-ई-एफ]

1.7. जो तथ्य किसी के लिए अज्ञात है, यह नहीं कहा जा सकता है कि उस पर विचार नहीं किया गया है और उस कारण से परामर्श प्रक्रिया को अधूरा नहीं माना जा सकता है। उस तथ्य को ध्यान में न रखने के लिए परामर्श प्रक्रिया को दोष देना जो उस समय ज्ञात नहीं था, परामर्श प्रक्रिया में लगे संवैधानिक अधिकारियों पर एक असंभव बोझ डालेगा और नियुक्तियों में अनिश्चितता का एक खतरनाक तत्व पेश करेगा। [पैरा 39] [736-सी-डी]

1.8. इसलिए, इस न्यायालय का स्पष्ट मानना है कि उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में प्रतिवादी संख्या 3 की नियुक्ति को रद्द करने के लिए अधिकार-पत्र जारी करने का कोई मामला नहीं बनता है। [पैरा 41] [736-एच]

1.9. त्वरित रिट याचिका को सार्वजनिक हित में दायर करने का दावा किया गया है, लेकिन यह प्रतिवादी संख्या 3 को बदनाम करने की एक चाल है। रिट याचिका की उत्पत्ति 27.12.2011 को एक तेलुगु दैनिक समाचार पत्र में प्रकाशित एक समाचार रिपोर्ट से हुई है। रिपोर्ट गलत तथ्यों पर आधारित है और ऐसे बयानों और आक्षेपों से भरी हुई है जो आसानी से मानहानि का अपराध बन सकते हैं, अदालत की अवमानना तो

दूर की बात है। इसलिए, ऐसा प्रतीत होता है कि यह रिट याचिका किसी ऐसी चीज़ को सही करने का ईमानदार और ईमानदार प्रयास नहीं है जिसे याचिकाकर्ता वास्तव में गलत मानते हैं, लेकिन इस याचिका का वास्तविक इरादा प्रतिवादी संख्या 3 को बदनाम करना है। इसे बरकरार रखना वास्तव में बहुत महत्वपूर्ण है। जैसा कि सीवीसी फैसले में बताया गया है, अदालत प्रणाली की संस्थागत अखंडता" लेकिन अदालत को अनावश्यक हमलों से और व्यक्तिगत न्यायाधीशों को अन्यायपूर्ण चोटों से बचाना भी उतना ही महत्वपूर्ण है। रिट याचिका न केवल निराधार है बल्कि प्रामाणिक भी नहीं है। [पैरा 44-46] [737-ई-एफ; 738-ए-डी]

जनहित याचिका केंद्र और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य 2011 (4) एससीआर 445 = 2011 (4) एससीसी 1 - संदर्भित।

सुप्रीम कोर्ट एडवोकेट्स-ऑन-रिकॉर्ड एसोसिएशन बनाम भारत संघ 1993 (2) सप्ल। एससीआर 659 = 1993 (4) एससीसी 441; 1998 का विशेष संदर्भ संख्या 1 [1998 (2) पूरक। एससीआर 400 = 1998 (7) एससीसी 739]; श्री कुमार पद्म प्रसाद बनाम भारत संघ 1992 (2) एससीआर 109 = 1992 (2) एससीसी 428, शांति भूषण बनाम भारत संघ 2008 (17) एससीआर 791 = 2009 (1) एससीसी 657 - उद्धृत

केस कानून संदर्भ:

1993 (2) पूरक एससीआर 659	उद्धृत	पैरा 7

1998 (2) पूरक एससीआर 400	उद्धृत	पैरा 7
1992 (2) एससीआर 109	उद्धृत	पैरा 9
2008 (17) एससीआर 791	उद्धृत	पैरा 9
2009 (10) एससीआर 921	संदर्भित	पैरा 9
2011 (4) एससीआर 445	संदर्भित	पैरा 16

सिविल मूल क्षेत्राधिकार: रिट याचिका (सिविल): 174/2012।

भारत के संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत।

याचिकाकर्ताओं के लिए शांति भूषण, गोपाल शंकरनारायणन, सैंथिल जगदीसन, कार्तिक सेठ।

उत्तरदाताओं के लिए जी.ई. वाहनवती एजी, विपिन कुमार जय।

न्यायालय का फैसला जस्टिस आफताब आलम ने सुनाया।

1. दो याचिकाकर्ता, जो आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय के वकील हैं, ने कथित तौर पर सार्वजनिक हित में, भारत के संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत यह याचिका दायर की है। यह रिट याचिका आंध्र प्रदेश के उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में प्रतिवादी संख्या 3 की नियुक्ति को रद्द करने के लिए यथा वारंटो की प्रकृति में एक रिट की मांग करती है और बार काउंसिल ऑफ आंध्र प्रदेश को उसका नामांकन रद्द करने का आदेश देने के लिए परमादेश की प्रकृति में एक रिट की मांग करती है। एक

वकील. उच्च न्यायालय न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में प्रतिवादी संख्या 3 की नियुक्ति को रद्द करने की मांग इस आधार पर की गई है कि उनकी नियुक्ति के लिए परामर्श प्रक्रिया को रद्द कर दिया गया था क्योंकि उच्च न्यायालय और उच्चतम न्यायालय कॉलेजिया के साथ-साथ केंद्र सरकार भी ऐसा करने में विफल रही थी। दो आवश्यक तथ्यों पर विचार करें; एक, उनकी नियुक्ति के समय, एक आपराधिक मुकदमा लंबित था जिसमें प्रतिवादी संख्या 3 न केवल आरोपी था, बल्कि एक घोषित अपराधी था और दूसरा, एक वकील के रूप में नामांकन के समय भी उन्होंने आपराधिक कार्यवाही को छुपाया था और इसमें बार काउंसिल में नामांकन के लिए आवेदन के संबंधित कॉलम में उन्होंने झूठा कहा कि उनके खिलाफ कोई कार्यवाही लंबित नहीं है।

2. उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में प्रतिवादी संख्या 3 की नियुक्ति पर याचिकाकर्ताओं की चुनौती को उचित परिप्रेक्ष्य में रखने के लिए, यहां प्रासंगिक तथ्यों की संक्षिप्त रूपरेखा देना उपयोगी होगा।

3. 14 नवंबर 1998 को आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में नियुक्ति के लिए प्रतिवादी संख्या 3 के नाम की सिफारिश उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश द्वारा की गई थी, जबकि अन्य दो कॉलेजियम सदस्य इस सिफारिश से सहमत थे। उच्च न्यायालय द्वारा की गई अनुशंसा 15 फरवरी 1999 को उच्चतम न्यायालय में प्राप्त हुई। उस

समय प्रतिवादी संख्या 3 की उम्र 41 वर्ष छह माह थी और उन्होंने 15 वर्ष से अधिक की वकालत पूरी कर ली थी। कानून और न्याय मंत्रालय द्वारा तैयार किए गए बायोडाटा में, जिसे सुप्रीम कोर्ट कॉलेजियम के समक्ष रखा गया, प्रतिवादी संख्या 3 का वर्णन इस प्रकार किया गया:

"श्री एनवी रमना, अधिवक्ता:

बायोडाटा:--

उन्हें 10 फरवरी, 1983 को एक वकील के रूप में नामांकित किया गया था। उन्होंने सिविल, आपराधिक, संवैधानिक, श्रम, सेवा और चुनाव मामलों में आंध्र प्रदेश के उच्च न्यायालय, केंद्रीय और आंध्र प्रदेश प्रशासनिक न्यायाधिकरण और भारत के सर्वोच्च न्यायालय में अभ्यास किया है। उन्होंने संवैधानिक, आपराधिक, सेवा और अंतर-राज्यीय नदी कानूनों में विशेषज्ञता हासिल की है। उन्होंने पिछले तीन वर्षों के दौरान लगभग 800 मामलों को संभाला है। उन्होंने आंध्रा बैंक, वैश्य बैंक, यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी और फूड कॉर्पोरेशन ऑफ इंडिया के लिए पैनल काउंसिल के रूप में काम किया है। उन्होंने हैदराबाद में केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण में केंद्र सरकार के लिए अतिरिक्त स्थायी वकील और रेलवे के लिए स्थायी वकील के

रूप में भी कार्य किया है। वर्तमान में वह आंध्र प्रदेश के अतिरिक्त महाधिवक्ता के रूप में कार्यरत हैं। पिछले तीन वर्षों के दौरान उनकी व्यावसायिक आय नीचे सारणीबद्ध है:

वर्ष	सकल आय	करदायी आय
1996-97	7,87,210	2,21,200
1997-98	10,31,465	3,68,950
1998-99	38,95,973	16,94,928

और उनके बारे में इंटेलिजेंस ब्यूरो की रिपोर्ट इस प्रकार है:

"**आई.बी. रिपोर्ट:**

उनकी व्यक्तिगत/पेशेवर छवि अच्छी है। उनके चरित्र, प्रतिष्ठा और सत्यनिष्ठा के खिलाफ कोई भी प्रतिकूल बात अभी तक सामने नहीं आई है। किसी भी राजनीतिक दल/सांप्रदायिक संगठन के साथ उनके संबंधों के बारे में भी कोई जानकारी सामने नहीं आई है।

उनका कोई भी मामला सामने नहीं आया है। रिश्तेदार

या तो किसी उच्च न्यायालय या उच्चतम न्यायालय में न्यायाधीश के रूप में कार्यरत हैं या पहले सेवा कर चुके हैं।"

4. विभिन्न संवैधानिक पदाधिकारियों के बीच परामर्श प्रक्रिया के बाद, 19 जून 2000 को एक अधिसूचना जारी की गई जिसमें प्रतिवादी संख्या 3 को आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में नियुक्त किया गया और प्रतिवादी संख्या 3 ने शपथ ली और 27 जून 2000 को आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय, न्यायाधीश के रूप में पद ग्रहण किया। तब से वह लगातार उस क्षमता में काम कर रहे हैं।

5. अब यह पता चला है कि जिस अवधि में उनकी न्यायाधीश के रूप में नियुक्ति के लिए सिफारिश की गई थी और अधिसूचना जारी की गई थी और उन्होंने न्यायाधीश के रूप में पदभार ग्रहण किया था, उस पूरे समय एक आपराधिक मामला लंबित था जिसमें प्रतिवादी संख्या 3 एक आरोपी था। इसलिए, आपराधिक मामले और उसकी कार्यवाही पर गौर करना आवश्यक है। विचाराधीन आपराधिक मामला वर्ष 1981 का है जब प्रतिवादी संख्या 3 नागार्जुन विश्वविद्यालय का छात्र था। ऐसा प्रतीत होता है कि विश्वविद्यालय के छात्रों ने अपने घरों से विश्वविद्यालय तक आने-जाने के लिए अपर्याप्त सार्वजनिक परिवहन सुविधाओं की शिकायत की, क्योंकि गुंटूर और विजयवाड़ा के बीच चलने वाली केवल कुछ बसें ही विश्वविद्यालय में

रुकती थीं। उन्होंने मांग की कि विश्वविद्यालय में अधिक बसें रुकनी चाहिए। जैसा कि इस देश में युवाओं के साथ असामान्य बात नहीं है, विश्वविद्यालय के कुछ छात्र इस मांग को लेकर आंदोलन पर उतर आए और रात करीब 8.30 बजे 13 फरवरी 1981 को लगभग 30 छात्रों के एक समूह ने नागार्जुन विश्वविद्यालय के सामने जीएनटी रोड पर अवरोध खड़ा कर दिया, जिससे सड़क पर सभी वाहन रुक गए। रात लगभग 9.15 बजे, राज्य परिवहन निगम की एक बस, गुंटूर से विजयवाड़ा जा रही थी, जब वहां पहले से ही भारी जाम था और सड़क के किनारे रुक गई। ऐसी स्थितियों में, दुर्भाग्य से राज्य बस सबसे नरम और सबसे कमजोर लक्ष्य है। इस मामले में भी सरकारी बस आंदोलनकारी छात्रों के गुस्से का निशाना बनी. बस के ड्राइवर को नीचे खींच लिया गया और ड्राइवर की सीट का दरवाजा क्षतिग्रस्त हो गया। कुछ उपद्रवियों ने बस पर पथराव किया और लोहे की छड़ों से उसकी विंडस्क्रीन और शीशे तोड़ दिए। एक यात्री को कुछ चोटें भी आईं. इतने में पुलिस दल भी मौके पर आ गया. इसी दौरान बस के अंदर रॉड में जलता हुआ तेल का कपड़ा बांध कर फेंक कर बस में आग लगाने का प्रयास किया गया. लेकिन, एक पुलिसकर्मी ने जलते हुए कपड़े को बुझा दिया और बस को किसी भी अन्य नुकसान से बचा लिया गया। इसके तुरंत बाद पुलिस ने आंदोलनकारी छात्रों को तितर-बितर कर दिया और सामान्य स्थिति बहाल कर दी। उसी दिन रात्रि 11.00 बजे बस के ड्राइवर ने मंगलागिरी पुलिस स्टेशन में घटना के संबंध में पहली सूचना रिपोर्ट दर्ज

कराई, जहां इसे दंड संहिता की धारा 147, 342, 427 और 324 के तहत 1981 के अपराध संख्या 55 के रूप में दर्ज किया गया था। एफआईआर अज्ञात व्यक्तियों के खिलाफ थी और आरोपियों को "नागार्जुन विश्वविद्यालय के छात्र" बताया गया था।

6. पुलिस ने जांच के बाद 10 अक्टूबर, 1983 को एक आरोप पत्र तैयार किया और 19 अक्टूबर, 1983 को इसे मुंसिफ मजिस्ट्रेट, मंगलगिरि की अदालत में प्रस्तुत किया, जहां इसे सी.सी. के रूप में पंजीकृत किया गया था। क्रमांक 229/1983. आरोप पत्र से ऐसा प्रतीत होता है कि आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा 161 के तहत दर्ज किए गए अपने बयानों में, बस के चालक और कंडक्टर (कुछ अन्य गवाहों के अलावा) ने छात्र-नेताओं के रूप में पांच लोगों की पहचान की और उनका नाम लिया जो नेतृत्व कर रहे थे। 13 फरवरी, 1981 को आंदोलन। तदनुसार, आरोप पत्र में पांच लोगों को आरोपी के रूप में उद्धृत किया गया और प्रतिवादी संख्या 3 को क्रम संख्या 4 पर सूचीबद्ध किया गया। सभी आरोपियों को भगोड़े के रूप में दिखाया गया था। हालाँकि, आरोप पत्र में यह खुलासा नहीं किया गया है कि आरोपियों की उपस्थिति सुनिश्चित करने के लिए जांच अधिकारी द्वारा क्या कदम उठाए गए थे। इस बात का कोई उल्लेख नहीं है कि जांच अधिकारी ने कभी भी अभियुक्तों को पकड़ने के लिए आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा 82 और 83 के तहत अदालत से

गिरफ्तारी वारंट या प्रक्रिया प्राप्त करने की कोशिश की थी। किसी आरोपी को भगोड़ा कहे जाने से पहले कानून द्वारा स्वीकृत प्रक्रिया का पालन किए बिना उन्हें बस भगोड़े के रूप में दिखाया गया था।

7. हालाँकि, मामले का तथ्य यह है कि यह अपराध मामला संख्या 229/83 (बाद में सीसी संख्या 75/87 और फिर सीसी संख्या 167/91 के रूप में पुनः क्रमांकित किया गया) प्रतिवादी संख्या की नियुक्ति के समय निर्विवाद रूप से लंबित था। 3 उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में और याचिकाकर्ताओं की ओर से यह तर्क दिया गया है कि आपराधिक मामले की लंबितता को ध्यान में रखने में विफलता, जबकि उनके नाम की सिफारिश उच्च न्यायालय कॉलेजियम द्वारा की गई थी और अनुमोदन और सहमति सुप्रीम कोर्ट द्वारा दी गई थी। उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में उनकी नियुक्ति के लिए कॉलेजियम और केंद्र सरकार ने संविधान के अनुच्छेद 217(1) में परिकल्पित और सुप्रीम कोर्ट एडवोकेट्स-ऑन-रिकॉर्ड एसोसिएशन [(1)] (1993) 4 एससीसी 441 में इस न्यायालय के निर्णयों द्वारा विकसित सहभागी परामर्श प्रक्रिया में गहरी खामियां पैदा कीं। और बाद में 1998 के विशेष संदर्भ संख्या 1 [(2)] (1998) 7 एससीसी 739 में यह प्रस्तुत किया गया है कि परामर्श प्रक्रिया के परिणामस्वरूप प्रतिवादी की नियुक्ति जो एक महत्वपूर्ण और प्रासंगिक तथ्य को ध्यान में रखने में विफल रही, पूरी तरह से अवैध थी और इसलिए, अधिकार प्रच्छा रिट में इसे रद्द किया

जा सकता था।. प्रतिवादी को उच्च न्यायालय के न्यायाधीश का पद संभालने का कोई अधिकार नहीं था और इस न्यायालय को उसकी नियुक्ति में हुई गंभीर त्रुटि को सुधारने के लिए कदम उठाना चाहिए।

8. यहां यह ध्यान देने की जरूरत है कि विद्वान अटॉर्नी जनरल से अनुरोध किया गया था कि वह इस रिट याचिका की विचारणीयता के सवाल पर अदालत को संबोधित करें, जिसमें उच्च न्यायालय के न्यायाधीश की नियुक्ति को रद्द करने की मांग की गई है। अटॉर्नी जनरल ने कहा कि रिट याचिका विचारणीय नहीं है और इसे सरसरी तौर पर खारिज किया जा सकता है। उन्होंने प्रस्तुत किया कि प्रतिवादी संख्या 3 की नियुक्ति को रद्द करने के लिए अधिकार-पत्र की प्रार्थना केवल एक दिखावा थी और याचिकाकर्ताओं का वास्तव में उद्देश्य उस न्यायाधीश को हटाना था जो बारह वर्षों से अधिक समय से पद पर थे। अटॉर्नी ने कहा कि किसी न्यायाधीश को पद से हटाना सीधे तौर पर न्यायपालिका की स्वतंत्रता से जुड़ा मुद्दा है जो संवैधानिक योजना के लिए मौलिक है। अटॉर्नी ने बताया कि न्यायपालिका को स्वतंत्र बनाने और न्यायाधीशों के लिए बिना किसी डर या पक्षपात के अपने कर्तव्यों का पालन करना संभव बनाने के लिए संविधान ने एक न्यायाधीश के कार्यकाल को मजबूती से सुरक्षित किया और यह अनुमति दी कि किसी भी श्रेष्ठ न्यायालय का न्यायाधीश केवल संसद द्वारा पारित महाभियोग प्रस्ताव के आधार पर पद से हटाया जा

सकता है जैसा कि अनुच्छेद 124 (4) (सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश के मामले में) और अनुच्छेद 217 के साथ पठित अनुच्छेद 124 (4) (के मामले में) के तहत प्रदान किया गया है। उच्च न्यायालय के एक न्यायाधीश)। संविधान ने किसी न्यायाधीश को हटाने के लिए किसी अन्य तरीके को मान्यता नहीं दी। अधिकार-पत्र द्वारा नियुक्ति को रद्द करने की आड़ में संवैधानिक प्रक्रिया से कोई भी विचलन संविधान की योजना का उल्लंघन होगा और न्यायपालिका की स्वतंत्रता के लिए हानिकारक होगा। उन्होंने आगे कहा कि यदि याचिकाकर्ताओं को लगता है कि प्रतिवादी संख्या 3 की आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में नियुक्ति गलत थी और उन्हें पद से हटाने का आधार है, तो वे हमेशा इस मामले को संसद के ध्यान में ला सकते हैं जो केवल संवैधानिक मंच ही उच्च न्यायालय के किसी न्यायाधीश को न्यायाधीश के रूप में उसकी नियुक्ति से पहले या बाद में किए गए किसी भी दुर्व्यवहार के लिए उसके पद से हटाने में सक्षम था। उन्होंने कहा कि यदि संसद ने याचिकाकर्ता की शिकायत पर न्यायाधीश को हटाने के लिए कोई कार्यवाही करने से इनकार कर दिया तो अदालत इस मामले में शक्तिहीन है और न्यायाधीश को उसकी नियुक्ति को रद्द करने के माध्यम से नहीं हटाया जा सकता है। उन्होंने यहां तक कहा कि गुण-दोष के आधार पर इस रिट याचिका पर विचार करने से न्यायालय अपनी संवैधानिक सीमाओं का उल्लंघन करेगा।

9. दूसरी ओर, याचिकाकर्ताओं की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री शांति भूषण ने कहा कि रिट याचिका में उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के उच्च पद पर नियुक्ति की अनुल्लंघनीयता और विश्वसनीयता का मुद्दा उठाया गया है। उन्होंने आगे कहा कि न्यायालय को गलत तरीके से उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में नियुक्त किए गए किसी व्यक्ति की रक्षा के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए, क्योंकि न्यायालयों और न्यायालयों की अध्यक्षता करने वाले न्यायाधीशों में लोगों का विश्वास और विश्वास स्वतंत्रता का समर्थन करने के लिए बहुत आवश्यक था। न्यायपालिका संविधान और कानूनों के तहत गारंटी के रूप में। श्री शांति भूषण ने आगे कहा कि पहले भी इसी तरह के मुद्दे न्यायालय के समक्ष आए थे और न्यायालय ने कभी भी मामले की योग्यता की जांच करने से इनकार नहीं किया और उचित आदेश पारित किए। प्रस्तुतीकरण के समर्थन में, उन्होंने इस न्यायालय के (i) श्री कुमार पद्मा प्रसाद बनाम भारत संघ [(3)] (1992) 2 एससीसी 428, (ii) शांति भूषण बनाम भारत संघ [(4)] (2009) 1 एससीसी 657 और (ili) महेश चंद्र गुप्ता बनाम भारत संघ [(5)] (2009) 8 एससीसी 273 के निर्णयों पर भरोसा किया।

10. श्री शांति भूषण द्वारा उद्धृत दूसरा मामला वह है जिसे उन्होंने स्वयं जनहित याचिका के रूप में दायर किया था, जिसमें मद्रास उच्च न्यायालय के अतिरिक्त न्यायाधीश के रूप में उस मामले में प्रतिवादी

संख्या 2 को दिए गए विस्तार पर हमला किया गया था। उन्होंने उस मामले में फैसले के पैराग्राफ 25 पर भरोसा किया, लेकिन, हम उस फैसले में ऐसा कुछ भी देखने में असफल रहे जो उनके कार्यभार संभालने के कई वर्षों के बाद न्यायाधीश की नियुक्ति को रद्द करने के लिए रिट याचिका की स्थिरता के सवाल पर एक प्राधिकारी के रूप में काम कर सके।

11. हालाँकि, श्री शांति भूषण द्वारा भरोसा किया गया पहला और तीसरा मामला विचार करने योग्य है।

12. श्री कुमार पद्मा प्रसाद मामले में, न्यायालय ने एक रिट याचिका पर विचार किया जो मूल रूप से गौहाटी उच्च न्यायालय के समक्ष दायर की गई थी लेकिन बाद में स्थानांतरित कर इस न्यायालय में लाई गई थी। रिट याचिका उस स्तर पर दायर की गई थी, जहां भारत के राष्ट्रपति के हस्ताक्षर और मुहर के तहत वारंट जारी किया गया था, उस मामले में उत्तरदाताओं में से एक, के.एन. श्रीवास्तव को नियुक्त किया गया था। गौहाटी उच्च न्यायालय के एक न्यायाधीश के रूप में, उन्हें अभी भी संविधान के अनुच्छेद 219 के तहत शपथ/प्रतिज्ञा लेनी थी और उस पर हस्ताक्षर करना था। इसका मतलब यह है कि उन्होंने न्यायाधीश के पद पर प्रवेश नहीं किया था और मामला अनुच्छेद 217 के चरण तक पहुंचने से पहले रिट याचिका दायर की गई थी क्योंकि जिस व्यक्ति की नियुक्ति को चुनौती दी गई थी, उसने अभी तक न्यायाधीश का पद ग्रहण नहीं किया

था। उस मामले में इस न्यायालय ने वास्तव में हस्तक्षेप करने और नियुक्ति को अमल में आने से रोकने के लिए कदम उठाया। इस न्यायालय ने पाया और माना कि भारत के राष्ट्रपति के.एन. द्वारा वारंट जारी करने की तिथि पर। श्रीवास्तव उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में नियुक्त होने के योग्य नहीं थे। तदनुसार, इसने गौहाटी उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में उनकी नियुक्ति को रद्द कर दिया और भारत संघ और अन्य संबंधित उत्तरदाताओं को निर्देश दिया कि वे केएन श्रीवास्तव को संविधान के अनुच्छेद 219 के तहत शपथ या प्रतिज्ञान न दिलाएं। केएन श्रीवास्तव को इसी तरह भारत के संविधान के अनुच्छेद 219 के संदर्भ में शपथ लेने या प्रतिज्ञान करने से रोका गया था। इस प्रकार, यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि न्यायालय ने संबंधित व्यक्ति के न्यायाधीश का पद ग्रहण करने से पहले ही इस आधार पर मामले में हस्तक्षेप किया था कि वह न्यायाधीश के रूप में नियुक्त होने के योग्य नहीं था या, दूसरे शब्दों में, इसके योग्य नहीं था न्यायाधीश के रूप में नियुक्त किया जाए।

13. "पात्रता" और "उपयुक्तता" की अवधारणाओं की जांच बाद में इस न्यायालय द्वारा महेश चंद्र गुप्ता के फैसले में की गई (जिसमें हममें से एक न्यायमूर्ति आफताब आलम भी सदस्य थे)। महेश चंद्र गुप्ता मामले में, पदधारी द्वारा अपना पद ग्रहण करने के बाद इलाहाबाद उच्च न्यायालय के एक न्यायाधीश की नियुक्ति को चुनौती दी गई थी। रिट याचिका में, जैसा

कि मूल रूप से दायर किया गया था, नियुक्ति पर केवल इस आधार पर सवाल उठाया गया था कि पदधारी के पास उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में नियुक्त होने के लिए बुनियादी योग्यता नहीं थी। बाद में, पूरक शपथपत्रों में अतिरिक्त दलीलें लेकर नियुक्ति को उपयुक्तता और प्रभावी परामर्श प्रक्रिया की चाहत के आधार पर भी चुनौती दी गई। कपाड़िया, जे. (जैसा कि उस समय उनका आधिपत्य था) ने न्यायालय के लिए बोलते हुए "पात्रता" और "उपयुक्तता" के बीच अंतर को उजागर किया और बताया कि पात्रता वस्तुनिष्ठ तथ्यों पर आधारित थी और इसलिए, यह न्यायिक समीक्षा के लिए उत्तरदायी थी। लेकिन, उपयुक्तता राय के दायरे से संबंधित है और इसलिए, किसी भी न्यायिक समीक्षा के अधीन नहीं है। न्यायालय ने उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति से संबंधित मामलों की श्रेणी की भी जांच की जो न्यायिक जांच के अंतर्गत आ सकते हैं और निष्कर्ष निकाला कि न्यायिक समीक्षा की मांग दो आधारों पर की जा सकती है, (i) "पात्रता की कमी" और (ii) "की कमी" प्रभावी परामर्श"। फैसले के पैराग्राफ 39, 43 और 44 में न्यायालय ने कहा:

> "39. इस स्तर पर, हम बता सकते हैंकि वहाँ "पात्रता" और "उपयुक्तता" के बीच एक बुनियादी अंतर है। उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में नियुक्त होने के लिए किसी व्यक्ति की उपयुक्तता को आंकने की प्रक्रिया उपयुक्तता के दायरे में

आती है। इसी प्रकार परामर्श की प्रक्रिया उपयुक्तता के दायरे में आती है। दूसरी ओर, प्रारंभिक स्तर पर पात्रता अनुच्छेद 217 (2) (बी) के अंतर्गत आती है। उपयुक्तता और पात्रता के बीच यह द्वंद्व अनुच्छेद 217 (1) में अनुच्छेद 217 (2) की तुलना में पाया जाता है। शब्द "परामर्श" को अनुच्छेद 217 (1) में जगह मिलती है जबकि "अर्हता प्राप्त" शब्द को अनुच्छेद 217 (2) में जगह मिलती है।

43. एक और पहलू पर प्रकाश डालने की जरूरत है। "पात्रता" एक वस्तुनिष्ठ कारक है. किसे उन्नत किया जा सकता है इसका उत्तर विशेष रूप से अनुच्छेद 217(2) द्वारा दिया गया है। जब "पात्रता" पर सवाल उठाया जाता है, तो यह न्यायिक समीक्षा के दायरे में आ सकता है। हालाँकि, यह सवाल कि किसे ऊपर उठाया जाना चाहिए, जिसमें अनिवार्य रूप से "उपयुक्तता" का पहलू शामिल है, को न्यायिक समीक्षा के दायरे से बाहर रखा गया है।

44. इस स्तर पर, हम इस तथ्य पर प्रकाश डाल सकते हैं कि न्यायिक समीक्षा और योग्यता समीक्षा के बीच एक महत्वपूर्ण अंतर है। परामर्श, जैसा कि ऊपर कहा गया है, अनुच्छेद 217 (1) के तहत उच्च न्यायालय के

न्यायाधीश नियुक्त होने के लिए किसी व्यक्ति की उपयुक्तता का परीक्षण करने की प्रक्रिया का हिस्सा है। एक बार परामर्श होने के बाद, उस परामर्श की सामग्री न्यायिक समीक्षा के दायरे से परे है, हालांकि प्रभावी परामर्श की कमी न्यायिक समीक्षा के दायरे में आ सकती है। यह सुप्रीम कोर्ट एडवोकेट्स-ऑन-रिकॉर्ड एसोसिएशन में इस न्यायालय की संवैधानिक पीठ के फैसले का मूल अनुपात है। और 1998 का विशेष संदर्भ संख्या 1।

(जोर जोड़ा गया)

14. फैसले के पैराग्राफ 71 और 74 में अदालत ने फिर से निम्नानुसार टिप्पणी की:

अनुच्छेद 217(1) के तहत नियुक्तियों की न्यायसंगतता:

71. वर्तमान मामले में, हम न्यायिक समीक्षा के लिए संवैधानिक औचित्य को प्रभावी बनाने के तंत्र से चिंतित हैं। जैसा कि ऊपर कहा गया है, "पात्रता" तथ्य का विषय है जबकि "उपयुक्तता" राय का विषय है। "पात्रता" की कमी से जुड़े मामलों में यथा वारंटो रिट निश्चित रूप से झूठ होगी। इसका एक कारण यह है कि "पात्रता" हैकोई बात नहीं व्यक्तिपरकता का. हालाँकि, उच्च न्यायालय का न्यायाधीश नियुक्त होने के लिए किसी व्यक्ति की

"उपयुक्तता" या "फिटनेस": उसका चरित्र, उसकी सत्यनिष्ठा, उसकी क्षमता और इसी तरह की बातें राय के विषय हैं।

74. यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि सहभागी परामर्श प्रक्रिया में शामिल प्रत्येक संवैधानिक पदाधिकारी को सहभागी संवैधानिक कार्य के निर्वहन का कार्य दिया जाता है; इन संवैधानिक पदाधिकारियों के बीच पदानुक्रम का कोई सवाल ही नहीं है। अंततः, संवैधानिक योजना में इस तरह की भागीदारी परामर्श प्रक्रिया को पढ़ने का उद्देश्य उच्च न्यायपालिका में नियुक्ति (नियुक्तियों) के निर्माण में न्यायिक प्रक्रिया शुरू करके न्यायिक समीक्षा को निर्दिष्ट क्षेत्रों तक सीमित करना है। सुप्रीम कोर्ट एडवोकेट्स-ऑन-रिकॉर्ड एसोसिएशन में निर्धारित तौर-तरीकों के अलावा ये मानदंड हैं। और 1998 के विशेष संदर्भ संख्या 1 के फैसले में भी, पुनः। नतीजतन, न्यायिक समीक्षा केवल दो मामलों में होती है, अर्थात्, "पात्रता की कमी" और "प्रभावी परामर्श की कमी"। यह परामर्श की विषय-वस्तु पर आधारित नहीं होगा।

(जोर जोड़ा गया)

15. महेश चंद्र गुप्ता मामले के फैसले के मद्देनजर, यह सवाल उठता है कि क्या मामला उन दो श्रेणियों में से किसी में आता है जो न्यायिक समीक्षा के लिए खुली हैं। माना कि प्रतिवादी संख्या 3 की योग्यता कोई

मुद्दा नहीं है। तो फिर, क्या यह कहा जा सकता है कि यह मामला "प्रभावी परामर्श की कमी" का मुद्दा उठाता है।

16. श्री शांति भूषण ने दृढ़ता से तर्क दिया कि जिस परामर्श के कारण प्रतिवादी संख्या 3 को आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में नियुक्त किया गया, वह इस बात पर विचार नहीं करने के लिए पूरी तरह से अपर्याप्त था कि वह एक लंबित आपराधिक मामले में आरोपी थे और परिणामस्वरूप, की नियुक्ति उत्तरदाता क्रमांक 3 पूरी तरह से दूषित था और यह इस न्यायालय द्वारा रद्द किये जाने योग्य था। सबमिशन के समर्थन में श्री शांति भूषण ने सेंटर फॉर पीआईएल एंड अदर बनाम यूनियन ऑफ इंडिया एवं अन्य [(6)] (2011) 4 एससीसी 1 (आमतौर पर सीवीसी केस कहा जाता है) में इस न्यायालय के फैसले पर बहुत भरोसा किया। श्री शांति भूषण ने प्रस्तुत किया कि उस मामले में इस न्यायालय ने संस्थागत अखंडता को पात्रता मानदंड का हिस्सा बनाया था और इस प्रकार, एक सार्वजनिक कार्यालय में नियुक्ति के लिए योग्यता के मानकों को अत्यधिक बढ़ाया था।

17. सीवीसी मामले में इस न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ ने माना कि केंद्रीय सतर्कता आयुक्त के रूप में श्री पी.जे. थॉमस की नियुक्ति की सिफारिश कानूनी रूप से गैर-कानूनी थी और परिणामस्वरूप, उस पद पर उनकी नियुक्ति को रद्द कर दिया गया। श्री पी.जे. थॉमस की

नियुक्ति की सिफारिश 2:1 के बहुमत से एक समिति द्वारा की गई थी जिसमें (i) प्रधान मंत्री, (i) गृह मंत्री और (iii) सदन में विपक्ष के नेता शामिल थे। लोगों की (निर्णय में उच्चाधिकार प्राप्त समिति या एमपीसी के रूप में संदर्भित)। न्यायालय ने माना कि सिफारिश निरर्थक थी क्योंकि एचपीसी 2003 के मामले संख्या 6 (केरल सरकार द्वारा पामोलीन तेल के आयात से संबंधित) की लंबितता पर विचार करने में विफल रही थी, जिसमें केरल सरकार ने मंजूरी दे दी थी भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 13 (i) (डी) के साथ पठित दंड संहिता की धारा 120-बी के तहत दंडनीय अपराध करने के लिए श्री पी.जे. थॉमस (अन्य के बीच) के खिलाफ मुकदमा चलाने के लिए और इसकी सिफारिश पूरी तरह से व्यापक मंजूरी पर आधारित थी। सीवीसी (तब कार्यालय में) द्वारा श्री पी.जे. थॉमस को दिया गया और तथ्य यह है कि आपराधिक मामले की लंबितता के दौरान श्री पी.जे. थॉमस को केरल के मुख्य सचिव, फिर संसदीय मामलों के सचिव और बाद में दूरसंचार सचिव के रूप में नियुक्त किया गया था।

18. पहली नज़र में सीवीसी मामले में मौजूदा मामले के साथ कुछ समानताएं प्रतीत होती हैं और सीवीसी मामले में निर्णय को वर्तमान मामले में लागू करने के लिए श्री शांति भूषण ने फैसले से उन अंशों का व्यापक रूप से हवाला दिया जहां इस न्यायालय ने पहचान की थी एक संस्थान और एक "अखंडता संस्थान" के रूप में सीवीसी ने उस संस्थान की

अखंडता को बनाए रखने और संरक्षित करने की अनिवार्यता पर जोर दिया और कहा कि सीवीसी के रूप में नियुक्ति की सिफारिश न केवल उम्मीदवार के संदर्भ में होनी चाहिए, बल्कि व्यापक विचार संस्थागत अखंडता पर होना चाहिए। कार्यालय का. (निर्णय के पैराग्राफ 34-37, 42, 43, 47, 59 और 89 देखें)।

19. हमने सीवीसी के फैसले और उस फैसले के आधार पर श्री शांति भूषण द्वारा की गई दलीलों पर सबसे सावधानी से विचार किया है, हर समय यह ध्यान में रखते हुए कि न्यायालय को किसी ऐसी चीज को नजरअंदाज या माफ नहीं करना चाहिए जिसका प्रभाव हो सकता है न्यायाधीशों या अदालतों में लोगों के विश्वास को कम करना। लेकिन हमने पाया है कि हालांकि सीवीसी मामले और मौजूदा मामले के बीच कुछ सतही समानताएं हैं, दोनों मामले अपने मूल मुद्दों में काफी भिन्न हैं और हमें सीवीसी के फैसले को मौजूदा मामले के तथ्यों पर उचित रूप से लागू करना असंभव लगता है।

20. सीवीसी मामले में एचपीसी श्री पीजे से अनभिज्ञ नहीं थी। थॉमस भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 13(1)(डी) के साथ पठित दंड संहिता की धारा 120-बी के तहत दंडनीय अपराधों के लिए एक लंबित मामले में आरोपी है। केंद्रीय सतर्कता आयोग अधिनियम, 2003 की धारा 4 के प्रावधान के तहत वैधानिक शक्ति का प्रयोग करते हुए एचपीसी ने जो

सिफारिश की, वह एक तरह से आपराधिक अदालत के समक्ष लंबित मुकदमे की अवहेलना थी। आपराधिक मामले में होने वाली उत्पत्ति और विकास की चर्चा सीवीसी मामले में फैसले के पैराग्राफ 8 से 21 में की गई है, जिससे यह प्रतीत होता है कि मामले की स्थापना नियंत्रक और महालेखा परीक्षक की रिपोर्ट से पहले की गई थी, उसके बाद। केरल विधानसभा की सार्वजनिक उपक्रम समिति की रिपोर्ट। रिपोर्टों के आधार पर, आपराधिक मामला शुरू करने के लिए उच्च न्यायालय के निर्देश की मांग करते हुए कम से कम दो रिट याचिकाएं दायर की गईं (असफल)। 20 मई, 1996 को चुनाव के बाद राज्य में नई सरकार के सत्ता में आने के बाद आखिरकार आपराधिक मामला दायर किया गया। मामला शुरू होने के बाद भी मामला बार-बार उच्च न्यायालय में गया और इस न्यायालय तक पहुंचा। केरल सरकार ने श्री पी.जे. थॉमस के खिलाफ मुकदमा चलाने की मंजूरी देने के लिए कार्मिक और प्रशिक्षण विभाग में केंद्र सरकार से बार-बार अनुरोध किया था। मामला केंद्रीय सतर्कता आयोग के पास गया था और श्री पी.जे. थॉमस के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू करने के लिए इसकी सिफारिशें रिकॉर्ड पर थीं। फैसले के पैराग्राफ 44 में, न्यायालय ने बताया कि 2000 और 2004 के बीच डीओपीटी की कम से कम छह नोटिंग में सुझाव दिया गया था कि श्री पी.जे. थॉमस के खिलाफ दंड की कार्यवाही शुरू की जा सकती है।

21. संक्षेप में, आपराधिक मामले के लंबित होने और श्री पी.जे. थॉमस के मामले में आरोपियों में से एक होने के बारे में तथ्य एचपीसी के समक्ष पूरे रिकॉर्ड में दर्ज थे। यह तथ्य न केवल एचपीसी के तीनों सदस्यों में से प्रत्येक की व्यक्तिगत जानकारी में था बल्कि यह सार्वजनिक डोमेन में भी था। इसलिए, एचपीसी की सिफारिश आपराधिक मामले की अनदेखी नहीं थी। आपराधिक मामले में आरोपी होने के बावजूद श्री पी.जे. थॉमस को केंद्रीय सतर्कता आयुक्त के रूप में नियुक्त करने की सिफारिश की गई थी और एचपीसी ने आपराधिक मामले को मुख्य सतर्कता आयुक्त के रूप में उनकी नियुक्ति के रास्ते में किसी भी बाधा के रूप में नहीं देखा।

22. आइए अब जांच करें कि वर्तमान मामले के तथ्य सीवीसी मामले से कितनी समानता रखते हैं।

23. रिट याचिका में और मामले की सुनवाई के दौरान प्रतिवादी संख्या 3 को बार-बार, थोड़े ढीले ढंग से और बल्कि अनैच्छिक रूप से, डकैती और बस जलाने के मामले में "भगोड़ा" और "घोषित अपराधी" कहा गया है। . ऊपर यह देखा गया है कि विचाराधीन आपराधिक मामले में डकैती या बस जलाने का कोई तत्व नहीं था। अब हम जांच कर सकते हैं कि प्रतिवादी संख्या 3 को "भगोड़ा" और "घोषित अपराधी" कहना कहां तक सही है।

24. यह ऊपर उल्लेखित है कि आरोप पत्र 19 अक्टूबर, 1983 को

मुंसिफ मजिस्ट्रेट, मंगलगिरि की अदालत में दायर किया गया था। 25 अक्टूबर को, मजिस्ट्रेट ने सुनवाई के लिए 25 नवंबर, 1983 की तारीख तय करते हुए सम्मन जारी करने का निर्देश दिया। आदेश के अनुसरण में जारी किए गए समन, कागज संख्या के रूप में चिह्नित फ़ाइल पर हैं। 25 से 30, लेकिन उन्हें सेवा के बारे में कोई समर्थन नहीं है। आरोपी 3 और 4 को समन के पीछे यह उल्लेख है कि वे बी.एल., प्रथम वर्ष, नागार्जुन विश्वविद्यालय में पढ़ रहे थे। 25 नवंबर 1983 को आरोपी अदालत में उपस्थित नहीं थे. उनकी अनुपस्थिति को ऑर्डर-शीट में दर्ज किया गया और सुनवाई की तारीख 23 दिसंबर, 1983 तय करते हुए नए सम्मन जारी करने का निर्देश दिया गया। आदेश के अनुपालन में समन जारी किए गए थे या नहीं यह ज्ञात नहीं है क्योंकि वे समन रिकॉर्ड में नहीं हैं। 23 दिसंबर, 1983 को आरोपी फिर से उपस्थित नहीं हुए और सुनवाई के लिए 25 जनवरी, 1984 की तारीख तय करते हुए फिर से समन जारी करने का निर्देश दिया गया। 25 जनवरी, 1984 को आरोपी एक बार फिर उपस्थित नहीं हुए और सुनवाई के लिए 15 फरवरी, 1984 की तारीख तय करते हुए नए सम्मन जारी किए गए। समन फ़ाइल पर कागज संख्या 31 से 36 के रूप में चिह्नित हैं। मामला तब कई तारीखों पर सूचीबद्ध किया गया था लेकिन आरोपी उपस्थित नहीं हुए। अंततः 27 नवंबर, 1985 को आरोपी 1 अदालत में उपस्थित हुआ लेकिन आरोपी 2 से 5 अभी भी उपस्थित नहीं थे। 9 जनवरी, 1987 को अदालत ने अभियुक्त 2 से 5 के मामले को अलग

करने का आदेश दिया और अभियुक्त 1 के मुकदमे को आगे बढ़ाया। 2 जून, 1987 को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 251 के तहत अभियुक्त 1 का बयान दर्ज किया गया। 1 मार्च, 1988 को, PW1 और PW2, अर्थात्, एस सत्यनारायण राजू और पी पेडा सिवैया (संबंधित बस के ड्राइवर और कंडक्टर होने के नाते) के बयान दर्ज किए गए थे। यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि न तो बस के ड्राइवर और न ही कंडक्टर (क्रमशः पीडब्लू1 और पीडब्लू2) ने बस पर हमला करने वाले आरोपियों का नाम लिया या उनकी पहचान की। ड्राइवर ने कहा कि लगभग 50 या 60 छात्रों ने एक समूह में उन पर हमला किया था। कंडक्टर ने बताया कि जब ड्राइवर ने बस रोकी तो छात्र चिल्लाते हुए आये और बस को रोक दिया. वह डर गया और कैश वाला बैग लेकर भाग गया। अभियोजन पक्ष ने किसी और गवाह की जांच नहीं की और 12 मई, 1988 को आरोपी 1 के खिलाफ आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के तहत जांच की गई, मामले में अगली तारीख 18 जुलाई, 2000 तय की गई। आदेश पत्रक पर आदेश का अनुपालन 11 मई 2000 अंकित है। हालाँकि, रिकॉर्ड से ऐसा प्रतीत होता है कि धारा 82 और 83 के तहत प्रक्रिया 11 मई 2000 को केवल आरोपी 3, पी.आर. मुरुथी पुत्र पी.बी.सुब्बाराव के खिलाफ जारी की गई थी। इसके बाद, वारंट के निष्पादन और उद्घोषणा की प्रतीक्षा में मामला कई तारीखों पर सूचीबद्ध किया गया था। 20 जून, 2001 को अदालत ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 299 के तहत अभियुक्तों की अनुपस्थिति में साक्ष्य दर्ज

करने के लिए कदम उठाए और फिर, मामले को तीन अलग-अलग तारीखों पर सूचीबद्ध करने के बाद, 5 नवंबर, 2011 को परीक्षण-में- बस चालक के प्रमुख (पीडब्लू1) पर आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा 299 के तहत मामला दर्ज किया गया था। उसी तारीख को, बस कंडक्टर (पीडब्लू2) की मुख्य परीक्षा दर्ज की गई थी। अपने बयान में न तो पीडब्लू1 और न ही पीडब्लू2 (बस चालक और बस कंडक्टर) ने किसी को आरोपी के रूप में नामित किया और दोनों ने कहा कि वे छात्रों के उस समूह के नेताओं को नहीं जानते जिन्होंने बस पर हमला किया था। फिर से उसी दिन, यानी 5 नवंबर, 2011 को, सहायक लोक अभियोजक ने इस आशय का एक आवेदन दिया कि आरोप-पत्र में उल्लिखित अन्य गवाह बस में यात्री थे और उनके निधन के मद्देनजर उनका पता-ठिकाना ज्ञात नहीं है। समय। तदनुसार, यह प्रार्थना की गई कि अभियोजन पक्ष के साक्ष्य को बंद कर दिया जाए।

27. इसके बाद, मजिस्ट्रेट ने मामले को लंबे समय से लंबित मामले के रूप में मानने के लिए कार्यवाही जारी करने के अनुरोध के साथ सत्र न्यायाधीश, गुंटूर को रिकॉर्ड प्रस्तुत किया। 26 दिसंबर, 2011 को सत्र न्यायाधीश ने ट्रायल जज को सीसी संख्या 167/1991 के मामले को लंबे समय से लंबित मामला घोषित करने की अनुमति दे दी।

28. हालाँकि, इसके तुरंत बाद 31 जनवरी 2002 को, सहायक लोक अभियोजक ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 321 के तहत एक आवेदन

दायर किया, जिसमें न्याय के हित में मामले को वापस लेने की अनुमति मांगी गई। आवेदन में जीओ आरटी संख्या 1961, दिनांक 11 दिसंबर, 2001 का संदर्भ दिया गया था जिसके तहत सरकार ने आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ अभियोजन वापस लेने का निर्णय लिया था। रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्रियों पर विचार करने पर, 31 जनवरी, 2002 के एक आदेश द्वारा, ट्रायल जज ने अभियोजन पक्ष को मामला वापस लेने की अनुमति दे दी और तदनुसार, सभी आरोपियों को बरी कर दिया गया।

29. अदालत के रिकॉर्ड के अवलोकन से पता चलता है कि पूरी अवधि के दौरान, चार आरोपी व्यक्तियों पर सामान्य तरीके से समन की तामील नहीं की गई। हालाँकि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 82 और 83 के तहत एक उद्घोषणा जारी करने का आदेश दिया गया था, लेकिन रिकॉर्ड में कोई प्रकाशन नहीं दिखाया गया है। हालाँकि, रिकॉर्ड से पता चलता है कि केवल आरोपी 3 पर ढोल बजाकर तामील करने की मांग की गई थी। रिकॉर्ड में यह दिखाने के लिए कुछ भी नहीं है कि समन या गैर-समन तामील करने के लिए कोई भी प्रयास, गंभीर प्रयास की तो बात ही छोड़ दें, किया गया था। किसी भी आरोपी व्यक्ति पर जमानती वारंट

30. आपराधिक मामले की कार्यवाही को विस्तार से बताने का उद्देश्य कार्यवाही में अनियमितताओं को इंगित करना नहीं है। दंड प्रक्रिया संहिता से थोड़ा सा परिचित होने पर भी कोई भी व्यक्ति यह देख सकता है कि

कार्यवाही में व्यावहारिक रूप से हर कदम पर गंभीर अनियमितताएं की गईं। हमने यह तय करने के लिए कार्यवाही का उल्लेख किया है कि क्या प्रतिवादी संख्या 3 को उस मामले का कोई ज्ञान है जिसमें उसे आरोपी 4 के रूप में उद्धृत किया गया था। मामले के रिकॉर्ड से, जिस पर हमने ऊपर विस्तार से चर्चा की है, हमें यह बहुत मुश्किल लगता है यह माना जाता है कि प्रतिवादी संख्या 3 को यह भी पता था कि मंगलगिरि की अदालतों में दफन कुछ रिकॉर्ड में उसे एक आरोपी के रूप में नामित किया गया था और उसे उस मामले के संबंध में अदालत में उपस्थित होना आवश्यक था।

31. मामले के रिकॉर्ड के अलावा, बाहरी परिस्थितियां भी हैं जो इस दृष्टिकोण को मजबूत करती हैं। प्रतिवादी संख्या 3 के बायोडाटा से, जैसा कि फैसले की शुरुआत में उल्लेख किया गया है, यह देखा जा सकता है कि उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में नियुक्ति से पहले, वह आंध्र प्रदेश के अतिरिक्त महाधिवक्ता थे। यदि मामला उनके अधीन होता तो यह अकल्पनीय है कि वे इस पर ध्यान नहीं देते और इसे किसी न किसी तरह से समाप्त करवा देते।

32. यहां यह भी ध्यान दिया जा सकता है कि इस न्यायालय के समक्ष यह रिट याचिका दायर करने से पहले याचिकाकर्ताओं ने भारत के मुख्य न्यायाधीश और कानून मंत्री दोनों के समक्ष एक अभ्यावेदन दिया था, जिसमें प्रतिवादी संख्या 3 को आंध्र के न्यायाधीश के पद से हटाने की

मांग की गई थी। इन्हीं आरोपों पर प्रदेश हाई कोर्ट. भारत के मुख्य न्यायाधीश के कार्यालय में आए अभ्यावेदन पर पूर्ण विचार किया गया और भारत के मुख्य न्यायाधीश ने 18 जनवरी, 2012 के अपने पत्र के माध्यम से आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश से इस मामले पर रिपोर्ट मांगी। न्यायमूर्ति, आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय ने विस्तृत जांच की और 7 फरवरी, 2012 को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। अपनी रिपोर्ट में मुख्य न्यायाधीश, आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय उसी निष्कर्ष पर पहुंचे, जैसा कि हम रिकॉर्ड के स्वतंत्र मूल्यांकन पर पहुंचे हैं। मामला। रिपोर्ट के पैराग्राफ 29 और 32 में, मुख्य न्यायाधीश ने निम्नानुसार कहा:

> "29. ऐसा प्रतीत होता है कि न्यायमूर्ति XXX आपराधिक मामले की लंबितता से अनभिज्ञ थे। मैं इसे मामले के रिकॉर्ड से कहता हूं, जो खुद ही बोलता है, और जिसकी सामग्री को दोहराने की आवश्यकता नहीं है। मैं इसे दूसरे कारण के लिए भी कह रहा हूं।
>
> 32. मेरी राय में न्यायमूर्ति XXX वास्तव में उनके खिलाफ आपराधिक मामले से अनभिज्ञ थे और जब वह ऐसा कहते हैं तो उन पर विश्वास किया जाना चाहिए।"

33. ऊपर की गई चर्चा के आलोक में, हमें यह मानने में कोई हिचकिचाहट नहीं है कि जिस समय प्रतिवादी संख्या 3 को उच्च न्यायालय

के न्यायाधीश के रूप में नियुक्ति के लिए विचार किया जा रहा था, वह किसी भी मामले के लंबित होने से अनभिज्ञ था जिसमें उसका नाम रखा गया था। एक आरोपी है और मामले में उसे "भगोड़ा और घोषित अपराधी" के रूप में संदर्भित करना काफी गलत है। यह निष्कर्ष दूसरे की ओर ले जाता है और वह यह है कि यह प्रतिवादी संख्या 3 द्वारा या उसके इशारे पर किसी भी भौतिक तथ्य को दबाने का मामला नहीं है। यहां हम यह स्पष्ट करना चाहते हैं कि यदि यह प्रतिवादी संख्या 3 द्वारा जानबूझकर और सचेत रूप से भौतिक तथ्य को दबाने का मामला होता तो स्थिति पूरी तरह से अलग होती। लेकिन यहां ऐसा नहीं है.

34. अब हम यह जांचने का प्रस्ताव करते हैं कि क्या प्रतिवादी संख्या 3 के अलावा, कोई और, जो इस तथ्य को उच्च न्यायालय कॉलेजियम या राज्य सरकार या सर्वोच्च न्यायालय कॉलेजियम या केंद्र सरकार के ज्ञान में लाने की स्थिति में हो सकता है। मामले के लंबित होने की जानकारी है.

35. श्री शांति भूषण ने प्रस्तुत किया कि राज्य पुलिस ने प्रतिवादी संख्या 3 के खिलाफ आरोप पत्र प्रस्तुत किया था और इसलिए, राज्य सरकार को इस तथ्य से अवगत होना चाहिए। प्रस्तुतीकरण में स्पष्ट रूप से इस बात की अनदेखी की गई है कि राज्य सरकार एक अखंड नहीं है और यह एक व्यक्ति के रूप में कार्य नहीं करती है। राज्य सरकार अलग-अलग

विभागों में काम करती है, जिनका संचालन अलग-अलग लोगों द्वारा किया जाता है और केवल इसलिए कि राज्य पुलिस द्वारा एक आरोप-पत्र प्रस्तुत किया गया था, इस तथ्य के बारे में कोई सचेत जानकारी राज्य सरकार को नहीं दी जा सकती है।

36. हमने आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में प्रतिवादी संख्या 3 की नियुक्ति से संबंधित रिकॉर्ड का ध्यानपूर्वक अध्ययन किया है। रिकॉर्ड से यह स्पष्ट है कि हाई कोर्ट या सुप्रीम कोर्ट कॉलेजिया के किसी भी सदस्य को इस तथ्य की जानकारी नहीं थी। राज्य सरकार भी इस तथ्य से अनभिज्ञ थी और केंद्र सरकार भी, जैसा कि कानून मंत्रालय द्वारा तैयार किए गए बायोडाटा और आईबी रिपोर्ट से स्पष्ट है।

37. यह सब नहीं है. 1993 में, प्रतिवादी संख्या 3 आयकर अपीलीय न्यायाधिकरण के सदस्य के पद के लिए एक उम्मीदवार था और उस संबंध में सर्वोच्च न्यायालय के एक मौजूदा न्यायाधीश की अध्यक्षता वाली चयन समिति द्वारा उसका साक्षात्कार लिया गया था। उन्हें नियुक्ति के लिए चुना गया और उन्हें आईटीएटी में न्यायिक सदस्य के रूप में 8 सितंबर, 1995 को नियुक्ति पत्र जारी किया गया। निस्संदेह पुलिस सत्यापन के बाद ही उन्हें नियुक्ति पत्र जारी किया गया था और उस स्तर पर भी उनके खिलाफ किसी आपराधिक मामले के लंबित होने के बारे में कुछ भी उल्लेख नहीं किया गया था। उन्होंने नियुक्ति स्वीकार नहीं की, यह अलग बात है.

38. सभी उपस्थित परिस्थितियों से, यह संदेह से परे स्पष्ट है कि न केवल प्रतिवादी संख्या 3 स्वयं बल्कि व्यावहारिक रूप से किसी को भी उस मामले की लंबितता के बारे में जानकारी नहीं थी जिसमें उसे आरोपी के रूप में नामित किया गया था।

39. इसलिए, सवाल उठता है कि क्या कोई तथ्य जो किसी के लिए अज्ञात है, उस पर विचार नहीं किया जा सकता है और क्या उस कारण से परामर्श प्रक्रिया को अधूरा माना जा सकता है। हमारे मन में इसका उत्तर केवल नकारात्मक ही हो सकता है। उस तथ्य को ध्यान में न रखने के लिए परामर्श प्रक्रिया को दोष देना जो उस समय ज्ञात नहीं था, परामर्श प्रक्रिया में लगे संवैधानिक अधिकारियों पर एक असंभव बोझ डालेगा और नियुक्तियों में अनिश्चितता का एक खतरनाक तत्व पेश करेगा।

40. यदि यह पता चलता है कि विचाराधीन व्यक्ति द्वारा कुछ महत्वपूर्ण तथ्यों को छुपाया गया था या उसके कहने पर दबाया गया था, तो यह धोखाधड़ी का मामला हो सकता है जो परामर्श प्रक्रिया को प्रभावित करेगा और परिणामस्वरूप इसके परिणामस्वरूप नियुक्ति होगी। लेकिन यदि कोई दमन नहीं हुआ है और नियुक्त व्यक्ति के न्यायाधीश का पद ग्रहण करने के काफी समय बाद तथ्य सामने आता है और यदि संसद के दोनों सदनों के सदस्य खोजे गए तथ्य को इतना गंभीर मानते हैं कि उसे कदाचार माना जाए और वारंट दिया जाए। उसे हटाया जाता है, तब भी

उसे अनुच्छेद 124(4) या अनुच्छेद 217 के प्रावधानों का सहारा लेकर अनुच्छेद 124(4) के साथ पठित, जैसा भी मामला हो, का सहारा लेकर पद से हटाया जा सकता है। हालाँकि, यदि तथ्य अज्ञात था और उस तथ्य को दबाया नहीं गया था, तो निश्चित रूप से इस दलील पर अधिकार-पत्र जारी नहीं किया जाएगा कि परामर्श प्रक्रिया दोषपूर्ण थी।

41. ऊपर की गई चर्चा के आलोक में, हमारा स्पष्ट विचार है कि आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में प्रतिवादी संख्या 3 की नियुक्ति को रद्द करने के लिए अधिकार-पत्र जारी करने का कोई मामला नहीं बनता है।

42. श्री शांति भूषण द्वारा उठाए गए कानूनी मुद्दे का उत्तर दिया गया है, लेकिन इस मामले को तब तक उचित रूप से बंद नहीं किया जा सकता जब तक हम यह भी नहीं कहते कि यह रिट याचिका, जिसे सार्वजनिक हित में दायर किया गया माना जाता है, हमारे विचार में, प्रतिवादी को बदनाम करने की एक चाल है। संख्या 3।

43. भारत के मुख्य न्यायाधीश को अपनी रिपोर्ट में आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश ने निम्नलिखित टिप्पणी की है :

"27. घटना लगभग 30 साल पहले की है. जस्टिस रमना के खिलाफ मामला लगभग 10 साल पहले वापस ले लिया गया था। इसे अभी उठाया जाना चाहिए, यह थोड़ा समझ से परे

है। मामला किसी भी तरह से इतना सनसनीखेज नहीं लगता कि कोई इसकी पैरवी करेगा। इसलिए, यह थोड़ा अजीब है कि इसे अब अचानक सामने आना चाहिए। संभव है कि इस मामले को उछालने के पीछे कोई वजह हो, लेकिन मैं मकसद समझ नहीं पा रहा हूं।"

44. भारत के मुख्य न्यायाधीश को संबोधित अभ्यावेदन के बारे में मुख्य न्यायाधीश ने बेहद संयमित तरीके से जो कहा, वह इस रिट याचिका पर अधिक लागू होता है। रिट याचिका की उत्पत्ति 27 दिसंबर, 2011 को 'साक्षी' नामक तेलुगु दैनिक समाचार पत्र में प्रकाशित एक समाचार रिपोर्ट से हुई है। रिपोर्ट की अनुवादित प्रति रिट याचिका के अनुलग्नक पी-11 के रूप में संलग्न है। रिपोर्ट गलत तथ्यों पर आधारित है और ऐसे बयानों और आक्षेपों से भरी हुई है जो आसानी से मानहानि का अपराध बन सकते हैं, अदालत की अवमानना तो दूर की बात है। खबर सामने आने के बाद ऐसा लगता है कि याचिकाकर्ताओं ने आपराधिक मामले का रिकॉर्ड एकत्र किया है और उसी के आधार पर यह रिट याचिका दायर की है। रिट याचिका कुछ कौशल के साथ तैयार की गई है और यह प्रतिवादी संख्या 3 को खराब रोशनी में चित्रित करने के प्रयास में आपराधिक मामले के तथ्यों को तोड़-मरोड़कर प्रस्तुत करती है। जिस तरह से रिट याचिका का मसौदा तैयार किया गया है उससे पता चलता है कि याचिकाकर्ता सक्षम और

अनुभवी वकील हैं। यदि उन्होंने आपराधिक मामले के रिकॉर्ड की निष्पक्षता और ईमानदारी से जांच की होती, तो उनके पास उसी निष्कर्ष पर न पहुंचने का कोई कारण नहीं था जैसा कि इस फैसले में आया था या मुख्य न्यायाधीश, आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय की रिपोर्ट से सामने आया था। इसलिए, हमें ऐसा प्रतीत होता है कि यह रिट याचिका किसी ऐसी चीज़ को सही करने का ईमानदार और ईमानदार प्रयास नहीं है जिसे याचिकाकर्ता वास्तव में गलत मानते हैं, लेकिन इस याचिका का वास्तविक इरादा प्रतिवादी संख्या 3 को बदनाम करना है।

45. अदालत प्रणाली की "संस्थागत अखंडता" को बनाए रखना वास्तव में बहुत महत्वपूर्ण है जैसा कि सीवीसी फैसले में बताया गया है और जैसा कि श्री शांति भूषण ने दृढ़ता से वकालत की है, लेकिन अदालत को अनावश्यक हमलों से बचाना भी उतना ही महत्वपूर्ण है। व्यक्तिगत न्यायाधीशों को अन्यायपूर्ण चोट पहुँचाने से।

46. ऊपर की गई चर्चाओं के आलोक में, हम पाते हैं कि यह रिट याचिका न केवल निराधार है बल्कि प्रामाणिक भी नहीं है। तदनुसार, इसे दोनों याचिकाकर्ताओं में से प्रत्येक द्वारा देय 50,000/- रुपये की लागत के साथ खारिज किया जाता है। लागत राशि आज से चार सप्ताह के भीतर आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय के कर्मचारियों के कल्याण के लिए एक कोष में जमा की जानी चाहिए।

आर.पी. रिट याचिका खारिज की गई।

(1) (1993) 4 एससीसी 441

(2) (1998) 7 एससीसी 739

(3) (1992) 2 एससीसी 428

(4) (2009) 1 एससीसी 657

(5) (2009) 8 एससीसी 273

(6) (2011) 4 एससीसी 1

यह अनुवाद आर्टिफ़िश्यल इंटेलिजेंस टूल "सुवास" की सहायता से न्यायिक अधिकारी श्री अरविन्द तोमर (आर.जे.एस.) द्वारा किया गया है ।

<u>अस्वीकरण</u> - इस निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यवहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।

*****